लावण्यवती सुदर्शन नायक

शालग्राम वैश्य

LAVANYAVTI SUDARSHAN NATAK

1890

निवेदन.

मुझको इस नाटकमें कोई ऐसा गुण और विचित्रता दृष्टि नहीं आती, जिसको पढ़कर, पाठकगण प्रसन्न हों; परन्तु न जानिये परमेश्वरका मेरेऊपर क्या अनुग्रह है जो बहुतसे विद्वानों और गुणियोंने इसे अवलोकन कर, प्रशंसापत्र दिये और सुन्दर सुन्दर समालोचना करके इस नाटकका गौरव बढ़ाया. जिन्होंने मेरे मनका उत्साह द्विगुण किया उन महाशयोंको अनेक अनेक धन्यवाद देता हूं. और जिन प्रियवर मित्रोंने सच्चे मनसे मेरी सहायता की एवं निष्कपट रीतिप्रीतिसे मेरा मान सन्मान किया तथा इस नाटकके प्रचलित करनेमें अत्यन्त परिश्रम उठाया, उनको भी वारंवार धन्यवाद देता हूं, और सच्चे मनसे उनका उपकार मानता हूं. क्योंकि, मुझको यह विश्वास नहीं था [illegible] बड़े सज्जन पुरुष मेरेऊपर उपकार कर, मेरे इस विचारको [illegible] तरमें प्रचार होगा. यह सब

समर्पण.

कृपासिन्धु !

देखो ! यह कैसा आनन्दका दिन है. विजयादशमी निकट है. रामलीलाके मेलेकी धूमधाम है. सब आमोदप्रमोदसे इधर उधर धाराप्रवाहकी भांति घूम रहे हैं. विदेशी लोग अपने अपने घरोंको आते हैं. कोई २ अपने इष्टमित्रोंके लिये अपूर्व वस्तु लाते हैं. आनन्दरव चारोंओरसे श्रवणगोचर होरहा है.

हे जीवनआधार ! कृष्णलाल प्यारे !

ऐसे समयमें मैं भी एक क्षुद्र उपहार ले, आपकी सेवामें उपस्थित होना चाहता हूं. परन्तु मुझको यह सन्देह है, कि मेरी इस तुच्छ भेटको आप ग्रहण करैंगे वा नहीं. जब मैं सुदामाके तन्दुलों और विदुरकी भाजीका स्मरण करता हूं, तब मुझको पूर्ण आशा होती है, कि आप मेरा निरादर न करेंगे. क्योंकि, आप तो प्रेमके भूखे हैं. " बड़े दया छोटनपर करहीं. "

हे नाथ ! जब यह तन [illegible]

अत्युत्तमरीतिसे नित्यप्रति होते रहते थे. इनमें पतिव्रता स्त्रियोंका पातिव्रत्यधर्म और सत्यशील वीरोंका वीरत्व और धैर्य, चतुरोंकी चतुरता, भक्तोंकी भक्ति और दृढता, प्रेमियोंका प्रेम और वियोगियोंकी करुणा, ऐसे दरशाते थे मानो साक्षात् वही लोग और वही समय है. क्यों न हो, जब हमारे राजा महाराजा ऐसे गुणग्राही होते थे, तब अनेक कवि उनके समीपवर्ती रहकर, अनेक अनेक प्रकारके नाटक और रूपक, प्रहसन रचकर राजाकी भेट करते थे, और राजा भी उन कवियोंका अनेक अनेक प्रकारका आदर सन्मान करते थे और यथोचित पारितोषिक देते थे. इस देशमें संस्कृत विद्याका ऐसा प्रचार था, कि ग्रामवासी भी संस्कृत ही भाषा बोलते थे. पृथ्वीराजके समयतक इस विद्याका कुछकुछ आचार व्यवहार रहा. जब पृथ्वीराज स्वर्गको सिधारे और यवनोंका राज्य हुआ, तब सब देशदेशांतरोंमें फारसी विद्याकी चर्चा फैलगयी. संस्कृत विद्या गुप्त होती चली. निदान, धीरे धीरे संस्कृतके ग्रन्थोंका ऐसा लोप हुआ, कि चार वेद, षट् दर्शन, अष्टादश पुराणोंका नाम ही नाम रहगया, [illegible] तो महाकठिन था. संगीत और नाटकविद्या तो [illegible] स्वप्नमें भी चिह्न नहीं दिखाई देता था. [illegible] कोई उनकी बा-

भूमिका.

प्राचीनकालमें इस भारतवर्षमें नाटकविद्याकी अधिक प्रणाली प्रचलित थी, और केवल नट नटी ही नाटक नहीं रचते थे, किन्तु राजा महाराजा भी नाटक रचते थे; और नाटकमें स्त्रियोंका रूप वेश्या ग्रहण करती थीं, जो नाटकविद्यामें अत्यंत प्रवीण होती थीं. जब कि प्रद्युम्नआदिक वीर वज्रनामके नगरमें गये, तब श्रीकृष्णचन्द्रने कुमारोंको नाटक करनेके लिये भेजा था. प्रद्युम्न सूत्रधार बने, साम्ब विदूषक और गद पारिपार्श्वक; यहांतक कि जो स्त्रियां नाटक रचनेमें परमचतुर थीं, सब साज लेकर, साथ गईं थीं.

पहिले दिन इन लोगोंने रामजन्मनाटक किया. जैसे सोमदत्तकी आज्ञासे गणिका स्त्री शृंगीऋषिको ठगकर, सभामें लाई, वह चरित्र सबको भलीभांति दिखाया. फिर दूसरे दिन रम्भाभिसारनाटक किया. शूरनामक यादव रावण बना. मनोवती नाम्नी स्त्री रम्भा बनी. प्रद्युम्न नलकूबर और साम्ब विदूषक. इसी प्रकरणसे प्रकट होता है, कि इस आर्यकुलमें बड़े बड़े लोग भी इस विद्यामें निपुण थे. [illegible] आखिल हरिवंशपर्वके विष्णुपर्व अध्याय [illegible] तक यह स्पष्ट लिखा है [illegible]

नाम मिटगया. जहांतहां अन्याय और अत्याचार होनेलगा. परन्तु प्रेम ऐसी उत्तम वस्तु है, कि यह किसीके हृदयसे बिलग नहीं हुआ. यह सबके मनमें ऐसे रमारहा, जैसे प्रत्येक वस्तुमें राम. किन्तु, समयकी विपरीति होनेसे इतना ब्योरा होगया. प्रथम ईश्वरी प्रेम था, अब प्राकृत प्रेम होगया. प्राकृत प्रेममें लोग ऐसे मतवाले होगये कि उसका वर्णन नहीं होसकता. इसमें प्रेमका कुछ दोष नहीं, यह सब समयका प्रभाव है. महापुरुषोंको सदा सब दिन एकसे रहते हैं. यथा सूरदास, तुलसीदासने अपने ग्रन्थोंमें उस समय भी ईश्वरीय महिमा और प्रेम दरशाया जो आजतक संसारमें प्रसिद्ध है. इससे सिद्ध होता है कि उनके चित्तमें ईश्वरीय प्रेमका सच्चा नेम था. और प्रेम तो ऐसी उत्तम वस्तु है, कि संसारमें इससे कोई जीवमात्र शून्य नहीं. देखो ! संसारमें सब लोग प्रेमकी बड़ाई करते हैं और कहते हैं कि संसारमें जो कुछ वस्तु है वह प्रेमही है. इस प्रेमके विना संसारमें कोई कार्य सिद्ध नहीं होता. बड़े बड़े ग्रन्थोंमें प्रेमहीकी महिमा वर्णन की है और यह भी दरशाया है कि इस प्रेमसे ही ईश्वरप्राप्ति होजाती है. परन्तु, इस प्रेममें भी कई भेद है
ईश्वर जीवका, पिता पुत्रका, मित्र मित्रका [illegible]
प्रेम पवित्र होनेसे जैसा [illegible]
[illegible]

द्भुत दशामें मग्न होजाते हैं और सबही प्रेम करना चाहते हैं. परन्तु, नायकनायिकाका प्रेमही इस समय अधिक प्रचलित होरहा है. जिसके द्वारा मनुष्य सुखसे अपना समय व्यतीत करते हैं. अब यह देखना है कि वह प्रेम कोई साधारण वस्तु है, वा मोदक है, कि झट मुखमें धरलिया. यह बड़ा कठिन मार्ग है. इसमें पग धरना बड़े वीरोंका काम है. जैसे कुछ क्लेश इस मार्गमें प्राप्त होते हैं, वैसे कदाचित् योगमार्गमें स्थित सिद्धोंको होते हैं. मनुष्य प्रायः विना विचारे इस ओर पग धर देते हैं, फिर दुःख उपस्थित होनेसे पीछे पछिताने लगते हैं. प्रायः इसका परिणाम भी अर्थशून्य होता है. मनुष्य जब इससे ग्रसित होता है, तब किसीके समझानेसे काम नहीं करता. क्योंकि, प्रथम इस मार्गमें पगपगपर मीठे मीठे घूंट पीनेको मिलते हैं. परन्तु यह नहीं जानते, कि अन्तमें जो विष भरे घूंट पीने पड़ेंगे; उनकी महाकठिन आंचको कौन झेलैगा. फिर या तो पीछेको हटना पड़ैगा, या प्राण भेट होंगे. यदि इस ओर पग धरनेसे, पूर्व ही उनको इसके गुण दोष दिखादिये जांय तो कदाचित् वे इधरको पग न धरैंगे. इसी कारण, मैंने यह लावण्य-
[illegible] नाटक लिखा है. इसके पाठ करनेसे पाठकोंको यह भली-
[illegible] का परिणाम कैसा भयंकर होता है.
[illegible] सबहीसे हाथ धोना
[illegible]

का प्रयोजन है, कुछ विषयासक्तिका नहीं. अधिक क्या लिखूं; "थोरेमें जानिहैं सयाने."

यवनोंका राज्य नष्ट होनेके उपरान्त, जबसे इस आर्यावर्तदेशमें श्रीमती महारानी विकटोरियाका राज्य हुआ तबसे फिर सब कवि और गुणी पुरुषोंके भाग्य जाग उठे. उसी प्रकार सबका मान सन्मान होने लगा. नगरनगर ग्रामग्राममें विद्यार्थियोंके लिये पाठशाला होगई. घरघर विद्याकी चर्चा फैलगयी. नागरी विद्याका ऐसा प्रकाश हुआ, जिससे सबके हृदयमें चांदना होगया और लोग उत्तमोत्तम पुस्तकें रचने लगे. उसी अति क्षीण अवस्थामें श्रीमान् भारतभूषण कविकुलमुकुटमणि, बाबू हरिश्चन्द्रजीने हिन्दी भाषामें नाटकविद्याका पुनरुद्धार किया, और अनेक नाटक, त्रोटक, व्यायोग प्रभृति रचकर, श्रीयुत राजराजेश्वर काशीराजमहाराजकी सभामें उनका अभिनय किया. उनके पश्चात् श्रीयुत पण्डित शीतलाप्रसाद त्रिपाठीका बनाया जानकीमंगल नाटक बड़ी धूमधामसे खेलागया. इसके उपरान्त प्रयाग और कानपुरके लोगोंने भी श्रीमान् लाला श्रीनिवासदास दिल्लीनिवासी जो तप्तासंवरण, संयोगितास्वयंवर, प्रह्लादनाटकके रचयिता हैं, उनहींका रचित रणधीर प्रेममोहनी नाटक बड़े आनन्दके साथ किया. यह नाटक वियोगान्त था. जिस समय रिपुदमन मारा गया और उसके शोकमें रणधीरसिंहने भी अपने प्राण तजदिये, उस समयका प्रेममोहनीका विलाप सुनकर, सैंकड़ों मनुष्य नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाते थे. और जब प्रेममोहनीने हाय रणधीर! कहकर, अपना शरीर छोड़ा, उस समय

सब मनुष्य अचानक हाहाकार पुकार उठे. सबका हृदय विदीर्ण होने लगा. उनके पीछे श्रीमन्महाराज पंडित **अंबिकादत्त** व्यासने **उद्धवशी टीका** और **ललितानाटक** व्रजभाषामें ऐसा मनोहर रचा कि जिसका रस पढ़नेहीसे जाना जाता है. फिर बाबू **रत्नचन्द्र** वकील हाईकोर्टने **भ्रमजालनाटक** ऐसा अनोखा और चोखा रचा; जिसको पढ़कर, बड़े बड़े चतुर धोखा खाजांय. फिर **सरोजिनीनाटक** पण्डित **गणेशदत्तशर्म्माने** ऐसा अद्भुत और अनुपम रचा तथा उसमें स्त्रियोंका ऐसा उत्तम सतीधर्म दर्शाया, जिसको देखकर, बादशाह अलाउद्दीन गोरीकी बुद्धि चकित होगई. राजा **लक्ष्मणसिंह** बुलन्दशहरनिवासीने **शकुन्तलानाटक**का संस्कृतसे हिन्दी भाषामें ऐसा अनुवाद किया, कि उसकी तुल्य आजतक दूसरा नाटक नहीं हुआ. जब ऐसे ऐसे उत्तम नाटक रचेगये और नाटकोंकी अधिक चर्चा फैली; तब मेरे मनको भी उत्साह हुआ, कि कोई नवीन नाटक रचना चाहिये. सो **माधवानल कामकन्दलानाटक** रचा. फिर विचार किया कि कोई ऐसा नाटक और रचना चाहिये, कि जिसमें भक्तिभाव भी हो, तो दूसरा **मयूरध्वजनाटक** रचा. परन्तु मेरे मनको तृप्ति न हुई, और चित्तमें यह विचार रहा कि कोई और नवीन नाटक रचना चाहिये जो वियोगांत हो, तो सोचते सोचते **लावण्यवतीसुदर्शननाटक**के रचनेका आरम्भ करदिया और सब मित्रोंकी कृपासे आज विजयादशमी गुरुवारको संवत् १९४७ में यह नाटक आनन्दपूर्वक समाप्त हुआ. अब सब

57

4

पाठक गणोंसे वारंवार मेरा यह निवेदन है, कि इसमें जो कुछ भूलचूक हो सो सुधार दें और कृपा करके एक पत्री मेरेपास भेज दें कि अमुक पत्रमें अमुक स्थानपर यह अशुद्धि है. ऐसा करनेसे उनका मेरे ऊपर परमोपकार होगा और मैं उनका सदा कृतज्ञ बना रहूंगा.

आपका कृपाभिलाषी

शालग्राम वैश्य,
मुहल्ला दीनदारपुरा, मुरादाबाद-सिटी.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
हरिप्रसाद भगीरथजी,
प्राचीन पुस्तकालय,
कालकादेवीरोड, रामवाड़ी,
मुम्बई.

प्रस्तावना.

नान्दी मङ्गलाचरण करता हुआ आया.

भूतेश्वर भूतनाथ शंकर त्रिपुरारी ॥

सोहत अरधंग संग, जटाजूट शीश गंग, अंगअंगमें भुजंग, लिपटे भयकारी ॥

कण्ठ गरल मृदुल बयन, अगनीसम बरत नयन, थर थर थर कँपत मयन, रूपको निहारी ॥

जय जय जय जय महेश, सेवत सुर शशि दिनेश, शिव शिव नित रटत शेष, वसुधा शिर धारी।

धारे गल मुण्डमाल, कर त्रिशूल चन्द्रभाल, शोभा अद्भुत विशाल, कष्टहरणकारी ॥

आनँदनिधि सुखनिधान, जनको अज्ञान जान, दीजे प्रभु अभयदान भक्तनहितकारी ।

नान्दीके अन्तमें सूत्रधारका प्रवेश.

सूत्रधार—(इधरउधर देखकर,) धन्य है सर्वशक्तिमान् परमेश्वरको, जिसने इस संसारमें अनेक अनेक रंगके फूल खिला रक्खे हैं. चारों ओरसे उन सुन्दर सुन्दर पुष्पोंकी सुगन्धसनी गन्धकी लपटेंकी लपटें मन्दमन्द पवनकी झकोरोंके सङ्ग चली आती हैं. (आगे बढ़कर) अहाहाहा!!! आज तो यहां बड़ा भारी समाज है. कैसे कैसे राजा, महाराजा, शूर, वीर, दानी, विज्ञानी, पण्डित, विद्धज्जन, पुरुष विद्यमान हैं. इन प्रेमी प्रवीण सज्जनोंको

कोई नवीन नाटक दिखाना चाहिये. (नटकी ओर देखकर,) अरे भाई! आज कोई ऐसा नवीन अभिनय रचो जिसमें प्रेम, करुणा और वीररस, तीनों झलकते हों।

नट—भाई! प्रेमका नाम मत लो, प्रेम करके किसीने सुख नहीं पाया. प्रेमियोंकी कथा तुमने सुनी ही होगी कि, जो प्रेमके पन्थमें गया सो गया.

सूत्रधार—कथा कैसी? प्रेम तो संसारमें सार वस्तु ही है, जहां प्रेम नहीं वहां कुछ नहीं.

नट—यह बात तो सब सत्य है, परन्तु जब प्रेम अधिक बढ़ जाता है, तब मनुष्य किसी कामका नहीं रहता।

दोहा.

देह गेह सुध बुध छुटै, छुटै धर्म्म तप नेम;
जगमें कुछ दीखत नहीं, होत अधिक जब प्रेम.
बनबनमें मारे फिरें, घर जन कछु न सुहात;
जपत रहत एकान्तमें, मित्र मित्र दिनरात.

सूत्रधार—होता तो ऐसाही है, परन्तु परिणाममें तो अपने प्रियतमसे मिलकर, आनन्द भोगता है.

नट—आनन्द ही तो नहीं भोगता, हानि तो यही है. किसी कविका वचन है:—

दोहा.

सबते भलो वियोग है, सदा मिलनकी आस;
कहिये भलो सँयोग क्यों, जामें बिछुरन त्रास.

अपना अपना दुःख सबने रोया, परन्तु सुख किसीको नहीं मिला; इसमें मरणपर्यन्त दुःख हरघड़ी देखनेंमें आता है.

सूत्रधार—भाई ! हमने तो कभी प्रेमके अन्तमें दुःख देखा नहीं, बरन सुना भी नहीं. परन्तु सच्चा प्रेम चाहिये.

नट—तो आज हम तुमको प्रत्यक्ष ही दिखाते हैं, जिससे तुमको साक्षात् विदित हो जायगा कि प्रेमका परिणाम कैसा मन्द होता है.

सूत्रधार—तो अवश्य दिखाइये, मैं भी समझ लूं कि प्रेमका अन्त बुरा है.

नट—अच्छा तो सोचलूं (सोचनेकी मुद्रा करता है.)

सूत्रधार—मैं स्मरण कराता जाऊं, जो इन नाटकोंमें हो तो वही करना.

नट—यह तो तुमने ठीक कहा, अच्छा अलग अलग नाम बोलते जाओ.

सूत्रधार—मालतीमाधव, माधवानल कामकन्दला, मोरध्वज, कर्पूरमञ्जरी, नलदमयन्ती, विद्यासुन्दर, चन्द्रावली.

नट—भाई ! ये नाटक और प्रकारके हैं, इनमें वह बात नहीं.

सूत्रधार—अच्छा, तो उस नाटकका नाम तुम्ही बताओ.

नट—मुझको इस समय उसके नामका ध्यान नहीं आता, मैं अपनी नटीसे बूझ आऊं. कोई ऐसा नाटक उसको स्मरण होगा. मुझे इस समय सुध नहीं आती. उसहीको बुलाऊं. (पुकारता है) प्यारी ! प्यारी ! ! हे प्यारी ! ! ! क्या सोगई ?

नटी—हां प्राणनाथ ! (गाती हुई आती है.) (निकट आकर) स्वामी, क्या आज्ञा है ?

नट—प्यारी ! आज्ञा तो पीछे होगी, पहिले यह तो बताओ, तुम इस समय क्या कररही थी, जो कईबारके बुलानेसे आई, और यह गीत तुम क्या गारहीं थीं ?

नटी—स्वामी ! क्या बताऊं, कुछ बूझो मति.

नट—प्यारी ! कुशल तो है, कहो तो सही क्या हुआ ?

नटी–हुआ क्या, मैं इस समय बैठी एक नवीन नाटक पढ़रही थी.

नट—सो, नाटक पढ़नेसे तुम्हारा हृदय धकधक क्यों करता है ? ऐसा अद्भुत नवीन नाटक कौनसा था ?

नटी—हे प्राणपति ! एक **लावण्यवतीसुदर्शन** नाम नाटक " **लाला शालग्राम वैश्य** " मुरादाबादनिवासीने अभी रचा है. उसका लालित्य और लावण्य देख, उसमें मेरा ध्यान ऐसा बँध रहा था, कि आपके पुकारनेतकको भी न सुन सकी. अहाहाहा ! इस नाटकमें प्रेम और करुणा आदि रस प्रत्यक्ष दिखाये हैं; जिसके अक्षरअक्षरसे प्रेमरस टपकरहा है. उसको पढ़नेसे मेरा रोमरोम कांपता है और कलेजा धकधक करता है; मैं अभी पढ़कर आई हूं.

नट—प्यारी ! ऐसा नाटक है तो क्या आश्चर्य है; उनके सभी नाटक ऐसे होते हैं. परन्तु यह तो बताओ तुम्हारे नेत्रोंसे आँसू इसप्रकार क्यों चले आते हैं, और तुम गाती क्या थी ?

नटी—स्वामी ! क्या कहूं, यह नाटक वियोगान्त (ट्रेजेडी) Tragedy जिसके पढ़नेसे पत्थरका हिया भी पिघल जाता है, और प्रेमका परिणाम भी विदित होजाता है, कि अधिक प्रेमसे मनुष्यकी दशा कैसी बिगड़ जाती है. उन प्रेमियोंके दुःखसे आज मेरे आंसू नहीं थमते (फिर शनैःशनैः गाती है.)

नट—प्यारी! मैने कईवार पूछा, तुम क्या गाती हो? बताओ तो.

नटी—स्वामी! उसी नाटकके अन्तमें लिखाहुआ है कि, "देखेउँ मन्द प्रेमपरिणाम."

बस, यह मेरे मनमें ऐसा चुभा है, जैसे चकोरके मनमें चन्द्र, इसीको वारंवार गाती हूं. अहा! कैसा उपदेश है.

नट—बलिहारी बलिहारी प्यारी, इस उपदेशका क्या कहना है. बस प्यारी, अब मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ.

नटी—स्वामी! आपका मनोरथ क्या था?

नट—आज सूत्रधारसे यही चर्चा हुई थी कि प्रेमका परिणाम मन्द होता है. वह इस बातको स्वीकार नहीं करता था.

नटी—क्यों स्वामी! वह क्यों नहीं मानता था.

नट—उसने कहा प्रेमका परिणाम आनन्दकारक है. नहीं है तो बताओ ऐसा कौनसा नाटक है. सो मुझको तो कोई ऐसा नाटक उस समय स्मरण नहीं होता था. उसने बताये तो बहुत, परन्तु अब काम बनगया. इसी नाटकको खेलेंगे. (गाता है) " देखेउँ मन्द प्रेमपरिणाम."

नटी—अच्छा प्राणनाथ! तो इसेही खेलो; जो इन सज्जनपुरुषोंके चित्तपर असर भी बरसोंतक बना रहे.

नट—दो०—नाटक रचिवो तौ भलो, जब रीझें सब लोग।
इतउत मुख तकते रहैं, आनँद और वियोग॥
रीझे विन आनँद कहा, आनँदविन कह खेल।
खेल कहा रसरंगको, जबलों होय न मेल॥

(दोनों जाती हैं.) इति प्रस्तावना.

नाटकपात्रोंके नाम.

नान्दी.	नान्दी.	नाटकके आदिमें मंगलाचरण पढ़नेवाला.
सूत्रधार.	सूत्रधार.	नाटक रचनेवालोंका मुखिया.
नट.	नट.	नाटक रचनेवाला.
नटी.	नटी.	सूत्रधारकी स्त्री.
सुदर्शन.	सुदर्शनकु०	नाटकका नायक.
सुलोच०.	सुलोचन.	सुदर्शनका मित्र.
विदूषक.	विदूषक.	सुदर्शनका भाण.
विजय०	विजयसिंह.	विजयनगरका राजा सुदर्शनका पिता.
मंत्री.	मंत्री.	विजयसिंहका मंत्री वीरेन्द्र.
दूत.	दूत.	समाचार पहुँचानेवाला.
द्वारपा०	द्वारपाल.	द्वारकी रखवारी करनेवाला.
समर०	समरसिंह.	कञ्चनपुरका राजा, लावण्यवतीका पिता.
मंत्री०	मंत्री	समरसिंहका मंत्री, सुमित्र.
दुर्मुख.	दुर्मुख.	एक राक्षस.
शुक.	शुक.	तोता.
सारि०	सारिका.	मैना.
महापु०	महापुरुष.	एक ऋषि उद्यानवासी.
कोतवा०	कोतवाल.	नगरका प्रबन्ध करनेवाला.
नगर०	नगरनिवासी.	प्रजागण.

वधि०	वधिक.	फांसीके देनेवाले.
सेनाप०	सेनापति.	सेनाका प्रबंध कर्ता.
सिपाही.	सिपाही.	सेनाके वीर.
लावण्य०	लावण्यवती.	नाटककी नायिका.
स्वर्ण०	स्वर्णलता.	लावण्यवतीकी सखी.
प्रेमल०	प्रेमलता.	लावण्यवतीकी दूसरी सखी.
विद्रुमल०	विद्रुमलता.	लावण्यवतीकी तीसरी सखी.
सरोजि०	सरोजिनी.	लावण्यवतीकी चौथी सखी.
योगन.	योगन.	प्रेमलताने योगनका वेष बनाया
माधवी.	माधवी.	लावण्यवतीके बागकी मालिन.
मालती.	मालती.	सुदर्शनकुमारकी माता.
मदन०	मदनलता.	मालतीकी सखी.
शीलव०	शीलवती.	सुदर्शनकुमारकी भगिनी.
पद्मगं०	पद्मगन्धा.	शीलवतीकी सखी.
हिरण्य०	हिरण्यमयी	सुदर्शनकुमारकी स्त्री.
चम्पा.	चम्पा.	हिरण्यमयीकी सखी.
सहचरी.	सहचरी.	लावण्यवतीकी टहलनी.

श्रीः।

लावण्यवतीसुदर्शननाटक.

प्रथमांक.

भाग प्रथम.

स्थान-लावण्यवतीका शयनभवन.

(लावण्यवती शयनभवनमें शयन कररही है, स्वर्णलता और सरोजिनी द्वारपर बैठी हैं, प्रेमलता जलकी झारी और शृंगारपिटारी लेकर आती है.)

सरोजिनी—बड़े आश्चर्यकी बात है!

स्वर्णलता—प्यारी! क्या? वर्णन तो कर.

प्रेमलता—आली! नित्यप्रति हमारी प्यारी लावण्यवती प्रातःकाल उठ, स्नान, ध्यान कर, मेंहदी, महावर रचाय, सोलह शृंगार बनाय, पुष्पवाटिकामें जाय, सुन्दर सुन्दर सुमनोंको देख देख, मनहीमनमें मग्न हुई रहती थी. न जानेये आज क्या कारण है, जो सवापहर दिन चढ़नेको आया, और लावण्यवती सोतेसे नहीं उठी. मैं तप्त नीरकी झारी, और शृंगारपिटारी लेकर, प्यारीकी बाट जोह रही हूं.

सरोजिनी—हे प्रेमलता! तुझको एक न एक ऐसाही सन्देह उत्पन्न होजाता है; सखी! आजदिन परमेश्वरने उसको सर्वानन्द दिखा रक्खे हैं. वह राजकन्या सर्वसुखसम्पन्न, सकलगुणभूषित, भुवनेश्वरी है; उसको सब बात शोभा देती है. मनकी लहर है, जिधरको फिर गई उधर फिर गई; उसको किसीका भय नहीं, चाहे प्रातःकाल उठे, चाहे दुपहरको उठे; तू वृथा घबराकर, क्यों अपने चित्तको बेचैन कर नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाती है?

प्रेमलता—हे सखी! नेत्रोंसे नीर कैसे न बहाऊं? आज मेरा सर्वस्व लुटा जाता है, शीघ्र जाकर लावण्यवतीकी सुधि ला, जो मेरे मनको धैर्य हो, विना उसके देखे शरीरकी कँपकँपाहट, हृदयकी धकधकाहट, और चित्तकी घबराहट, कदापि नहीं जानेकी; जबतक अपनी प्यारी लावण्यवतीको नेत्रोंसे न देखलूंगी, मुझे अपनी देहके रहनेमें भी संदेह दिखाई देता है.

स्वर्णलता—सुधि तो मैं अभी लाये देती हूं, परन्तु तुझे मेरी सौगन्द है, तू मुझसे सत्य सत्य कहदे, तेरे मनमें सन्देह क्या है? जो हृदय धकधकाता है. आखोंमें आंसू भर रहे हैं, कोई स्वप्न देखा, वा कोई भूत, प्रेत, पिशाच दृष्ट आया, जो एकदमसे ही सब अंगोंका रंग पीला पड़गया, ऐसा क्य अद्भुत चरित्र देखा?

प्रेमलता—(नेत्रोंमें जल भरकर) हे प्यारी! कहनेके

योग्य तो नहीं, परन्तु कहती हूं. रात मैंनें एक स्वप्न देखा है, परन्तु कहनेसे चित्तको अत्यन्त संकोच होता है, और बिना कहे रहा नहीं जाता.

चौपाई.

"भइ गति सांपछछूंदरकेरी"

स्वर्णलता—सखी! जो बात कहनेकी है उसका गुप्त रखना अच्छा नहीं, अब सब सोच संकोचको त्याग अपने मनकी बात कह.

प्रेमलता—मैं आधीरातके समय स्वप्नमें क्या देखती हूं कि, एक अत्यन्त सुन्दर मन्दिर है, उसमें एक सुन्दरी नवयौवना और कलानिधि दोनों एक शय्यापर बैठे आनन्द कर रहे हैं.

स्वर्णलता—फिर क्या देखा?

प्रेमलता—उस चारुहासिनीकी तिरछी चितवन, और मनोहर छबि, मेरे मनको मोहलेती थी; मैं उस मनमोहनीके मोहके वशीभूत हो, ऐसी विह्वल होगई. मुझे अपने तन मनकी भी सुधि बुधि न रही. मैंनें उस दशामें यह भी न पहिचाना कि, वह कोमलांगी कामिनी कौन थी.

स्वर्णलता—होगी कोई. तेरा क्या प्रयोजन?

प्रेमलता—अरी, पूरी बात तो सुन.

स्वर्णलता—अच्छा, कह.

प्रेमलता—थोड़ी देरउपरान्त देखा तो दोनोंका बि-

छोहा होगया, और चन्द्रमा उस चन्द्रमुखीके वियोगमें व्याकुल हो, हाय हाय करता और शिर पटकता फिरता था. उस समय ऐसा तन छीन और कांतिमलिन होगया, मानो राहुने ग्रस लिया है. उधर वह गजगामिनी ठंढे ठंढे श्वास भर भर, बिलगही विरहकी व्यथासेविकल हो, बिलख बिलख रो रो कर कह रही थी, कि "हे प्राणनाथ! हे प्राणनाथ!" उनके विलापकलाप सुनकर मेरी छाती फटती थी.

स्वर्णलता—बस, इसीबातपर पेट फाड़ मरी जाती थी, तेरा चन्द्रमासे और उस चन्द्रकलासे क्या सम्बन्ध था?

प्रेमलता—अरी! चल; तुझे हँसी सूझी है, मेरे प्राणोंसे बन रही है, जो बात है वह तो रहही गई.

स्वर्णलता--अच्छा, प्यारी! रिसाती काहेको है, जो बात रहगई है वह अब कह. फिर क्या हुआ?

प्रेमलता–निशाकर योगीका वेष बनाये, शिरपर जटा बढ़ाये, हमारी पुष्पवाटिकामें आया है; और इधरसें हमारी प्यारी लावण्यवती, पुष्पोद्यानकी शोभा देखनेको पधारी है; और उस योगी वियोगीपर आसक्त हो, उसके संग चलीगई है; उसी घवराहटमें मेरी आंख खुलगई, तो न विधु है, न विधुवदनी है; तबसे मेरे हृदयमें ऐसी बेकली है, न सोते-कल, न बैठे कल, नींद भूँख कोसों भाग गई; अब घबराई हुई तेरे पास आई हूं, तू शीघ्र जाकर देख राजकुमारी मन्दिरमें है वा नहीं.

स्वर्णलता—हे प्यारी ! ईश्वरकी गति सर्वोपरि बलवान है, होनहार किसीके मिटायेसे नहीं मिटती; ब्रह्मा, शिव, शेषसरीखे सहस्रों यत्न कर कर हार गये, हमारा तुम्हारा क्या सामर्थ्य है; परन्तु मेरे ध्यानमें ऐसा आया है, कि, वह योगी जो द्विजराजके वेषमें था किसी तेजस्वी राजाका पुत्र था, और हमारी प्यारी राजकुमारी जो थी, वही द्विजराजमुखी कोई कामिनी थी. विदित होता है कि, सोई राजकुमार हमारी राजकुमारीसे आकर रिति प्रीति करैगा, और लावण्यवतीका विवाह उसीके संग होगा. मेरी समझमें तो यह बात आती है, आगे जो कुछ परमेश्वरकी इच्छा.

प्रेमलता—सखी ! यह तो तूने सत्य कहा, परन्तु विना उसके देखे मेरे मनको धैर्य कैसे हो; जो प्रातःकालकी उठनेवाली वह सवापहर दिन चढ़ेतक न उठे, यह बड़े आश्चर्यकी बात है !

स्वर्णलता—इसमें आश्चर्यकी क्या बात है ? इस शरीरमें सैकड़ों बाधा लगी हुई हैं. न जानिये क्या कारण है.

प्रेमलता—अली ! तू क्या कहती है ? मुझको भलीभांति विदित होता है कि, प्यारी शयनभवनमें नहीं, जो प्यारी यहां होती तो इससमयपर्यन्त कभी न सोती; वह नित्यप्रति प्रातःकाल उठ सोलह शृंगार बनाय, पुष्पवाटिकामें जाय, सुन्दर सुन्दर फूलोंकी शोभा देख देख, अत्यन्त प्रफुल्लित होती थी; इतने दिन मुझको देखते होगये, ऐसा कोई दिन

न हुआ जो प्यारी पुष्पवाटिकामें पर्यटनको न गई हो, इसके निःसन्देह ज्ञात होता है कि, राजकन्याको कोई ले उड़ा.

स्वर्णलता—तू घबराय मति, अब मैं देखने जाती हूं.

प्रेमलता—तो जा, विलम्ब मत कर.

(स्वर्णलता जाती है, और यवनिका गिरती है).

इति प्रथमांकका प्रथम भाग समाप्त.

भाग द्वितीय.

स्थान-लावण्यवतीका शयनागार.

(लावण्यवती शय्यापर सो रही है, और स्वर्णलता खड़ी कह रही है.)

स्वर्णलता—हे चंद्रानने ! आज क्या कारण है, जो इस समयतक सोतेसे नहीं उठी ? शीघ्र उठो, पुष्पवाटिकामें घूमो, चित्तको प्रसन्न करो; देखो, कैसे कैसे सुहावने मनभावने सुमन खिल रहे हैं, परन्तु तुम विना सब पुष्प तन छीन मन मलिन नीची गर्दन किये भटक रहे हैं और लता वृक्षोंसे शिर पटक रहे हैं; मदनबान मदनकी समान घायल पड़ा है, गन्धराजमें गन्धका नाम भी नहीं रहा, जाती कुजातीसी दृष्टि आती है, चमेली अलबेलीही रीतिसे विलाप कर रही है, सेवती कह रही है, हाय ! राजकुमारी अबतक नहीं आई, जो मैं उसके चरणकमलोंको सेवती; लज्जावती लज्जाकी मारी शिर झुकाये विकल पड़ी है, चम्पा चंपासा चुपचाप खड़ाही

खड़ा पीला पड़गया, मालतीका हाथ मलते मलते रंग स्वेत हो गया; शीघ्र. सिधारिये, सब फूल फूलनेसे बन्द हो रहे हैं, शुक सारिको वृक्षोंकी शाखाओंपर बैठे हाहाकार मचा रहे हैं, कोकिला कूक कूक तुझको बुला रही हैं.

लावण्य०—(चौंककर और व्याकुल होकर) अरी निर्दय-उपाधन् ! तूनें मेरे आनन्दमें बड़ी हानि की, जो मुझे आ-कर जगा दिया. अरी मूर्ख ! कैसा शृंगार, और कैसी पुष्प-वाटिका ? अब मेरे प्राणही बचने कठिन हैं.

स्वर्णल०—हे प्यारी ! तुमको क्या होगया, कहो तो सही. मुझसे अनजाने अपराध होगया, क्षमा करना.

लावण्य०—तेरा कुछ दोष नहीं, यह सब हमारेही कर्मों-का दोष है. हाय ! कहां तो वह आनन्द और कहां यह दुःख; विधाताकी गति कुछ जानी नहीं जाती, अब मेरा चित्त घ-बराता है, और मुझसे बोला नहीं जाता; हृदयमें शूलसे ख-टक रहे हैं. तू मेरे सन्मुखसे हटजा. (आपही आप) हे दई नि-र्दई ! तुझे कुछ भी दया नहीं ? हाय ! प्यारे ! मैं यह नहीं जा-नती थी, पहिले वह सुख दिखाकर पीछे यह दुःख दिखा-ओगे, और मेरे संगकी सहेलीही मेरी शत्रु होजायगी।

स्वर्णल०—प्यारी ! तुम्हारी दुर्दशा देखकर मेरा चित्त व्याकुल हुआ है, यह तुम्हारी क्या गति होगई ? जो बोलने-की भी सामर्थ्य नहीं रही. कोई अद्भुत स्वप्न देखा जो जा-गतेही शरीरकी सब सुधि बुधि बिसार, ठण्डे ठण्डे श्वास भर

हाहाकार करने लगी; तनका रंग श्वेत दृष्टि आनेलगा, नेत्रोंसे आंसूपर आंसू बहे चले जाते हैं; भला, विना तेरे कहे मुझको कैसे विदित हो ? हे प्यारी ! मैं तेरी दासी हूँ, इसकारण मुझसे तेरी उदासी नहीं देखी जाती; तू अपना भेद प्रगट कर जो मेरे मनको संतोष हो, और उसका उपाय किया जाय. जो मेरे करनेका होगा तो मैं करूंगी, और जो औरके करनेका होगा तो उसे लाऊंगी, अब तुम उठकर हाथ मुह धोओ, शृंगार करो, फुलवारीमें चलकर मन बहलाओ.

लावण्य०—(नेत्रोंमें जल भरकर) प्यारी ! कैसी फुलवारी! मेरे तो हृदयहीमें प्रेमका बिरवा उपज खड़ा हुआ है, उसीके सींचनेके लिये नेत्रोंसे नीर धाराप्रवाह चला जाता है; और फुलवारीके फूल तो मेरे लेखे शूल होगये. शृंगार कैसा ? हे सखी ! मेराही शृंगार मेरा शत्रु होगया; हाय ! मेराही शीशफूल चक्रवत् हो मेराही शीश काटनेको उद्यत है, बन्दी ऊपर दृष्टि उठानेतककी बन्दी कर रही है, झूमर मतवाले हाथीकी सदृश नेत्रोंके सन्मुख झूम रहा है; कर्णफूल त्रिशूलसम कपोलोंको छेद रहे हैं, कानोंकी बालीमें जो मुक्ता लटक रहे हैं सो मुझको बाली भोली जान जान लेनेको उपस्थित हैं और पुकार पुकार यह कहते हैं कि, "किसी समय तूने हमारा हिया वेधन किया था, अब हम तेरा हृदयवेधन करेंगे," हार जंजीरकी भांति गला घोटता है, चम्पाकलीके दाने छुरी कटारीसे हृदयमें खटकते हैं, भुजबन्दोंने भुजा ऐसी बांधी हैं, कि उठ-

तीही नहीं; हाय ! यह पहुँची मुझ पहुँची पहुँचाईको प्रीतमके निकटसे फेर लाई; आरसी हृदयमें बार बार आरसी मार मार, मेरा मुख निहारती है; ये कड़े बेड़ियोंसे भी कड़े जान पड़ते हैं; ऐसा अनर्थ आजतक सुना भी न होगा, मेरीही लटोंके बाल व्यालाकार हो मेरेही डसनेको प्रस्तुत हैं; इससे अधिक कोई और शत्रुता है? अब मुझे अपने तनपर वस्त्र भी मृतकवस्त्रसे दिखाई देते हैं; सखी ! अब मुझे अपने शरीरका भरोसा नहीं.

स्वर्णलता–हे सजनी ! सत्य सत्य कह. ऐसी तुझपर क्या विपत्ति है? जो सब वस्तु बुद्धिके विरुद्ध दृष्टि आती हैं; भूषणोंको बिछुए कटारी, वस्त्रोंको मृतकर्पट, फूलोंको शूल, बालोंको व्याल बताती है: ये सब विरहके लक्षण हैं, विना वियोग ये बातें नहीं होतीं.

लावण्य०–सखी ! यह बात तो तेरी ठीक है; फिर इसका कुछ उपाय है ?

स्वर्णलता–प्यारी ! ऐसी कौनसी बात है, जिसका उपाय नहीं, परन्तु विना कहे मुझको कैसे प्रगट हो कि, तेरी क्या दशा है ?

लावण्य०–(ठण्डे श्वास भरकर) सखी ! जब मैंने अपना शृंगार किया और दर्पण हाथमें लिया, तो मुझे पिय प्यारेकी सुधि आई; तब मैनें अपने मनमें कहा परमेश्वर ऐसा भी कोई दिन करेगा, जो मेरा प्राणाधार मेरे संग हास-

बिलास करेगा, इसी ध्यानमें मैं सोगई, तो स्वप्नमें क्या देखती हूं कि, एक पुरुष सुन्दर स्वरूपवान्, युवा अवस्था, गौर बरन, कामकीसी कला, शीशपर मुकुट धरे, रेसमके वस्त्र पहिरे, लाल दुसाला ओढ़े, मेरे सन्मुख आय खड़ा हुआ और हँस हँसकर प्रेमप्रीतिकी बातें करने लगा. जबहीं मैंने चाहा कि, मैं भी कुछ कहूं, उसी समय तूनें मुझे आकर जगा दिया. हे प्यारी ! अब मैं उस मनमोहनी सूरत और मनभावनी मूरतको कहां पाऊं और क्या करूं ?

स्वर्णल०–हे लावण्यवती ! निःसन्देह मुझसे तेरा अधिक अपराध हुआ, परन्तु जबलों मैं तेरे मित्रको न मिलादूंगी तबलों दूसरे कामका नाम न लूंगी, तू अपने मनमें निश्चय रख. मैं अभी योगनका वेष बनाकर तेरे प्राणप्यारेको ढूंढ़ने जाती हूं. परंतु इतनी बात बतादे उसका नाम क्या है ? फिर मैं काशी, कर्नाटक, कालपी, कन्नौज, कामरू, कश्मीर जहां मिलेगा वहांसे ढूंढकर ले आऊंगी.

लावण्य०–बस, झूंठी बात मेरे आगे मत बना. ऐसी बात सुनकर मेरा देह जलकर भस्म हो जाता है; अरी मूर्ख ! तेरी वही कहावत है कि "मरी क्यों की श्वास न आई." अरी निर्बुद्धिनी ! जो मैं नाम ग्रामही जानती तो फिर क्या सन्देह था, इसी समय दूतको भेजकर पता लगा लेती.

स्वर्णल०–प्यारी ! अब मैं तो तेरी अपराधिनी होगई, और जो मैं न जगाती तो तू कब तक सोती रहती; नि-

दान कभी तो जागतीही, फिर उस समय वियोग होता वा न होता, परन्तु मुझको दोष लगना था सो लगगया. अब इस सब बातको बिसार, वह काम करना चहिये कि जिससे काम बने.

लावण्य०–सखी ! वह कौनसा उपाय है ?

स्वर्णल०–पण्डित, ज्योतिषी लोगोंको बुलाओ और अपना वृत्तांत सुनाओ, देखो वे क्या कहते हैं.

लावण्य०–हे स्वर्णलता ! यहभी परिश्रम तुमहीसे होगा.

स्वर्णल०–अच्छा प्यारी, तो पहिले प्रेमलता, और सरोजिनीको बुलाऊं; वे चौदह विद्या निधान हैं, इन्द्रजालके यंत्र मंत्र भलीभांति जानती हैं और जादू, टोना, मारण, उच्चाटन, मोहन, आकर्षण विद्यामें अत्यन्त निपुण हैं.

लावण्य०–सखी ! मेरा चित्त तो ठिकाने नहीं; तूही जाकर उन्हे ला.

स्वर्णल०–तो मैं सरोजिनीको भी बुलाये लातीहूँ; वहभी बड़ी चतुर है.

लावण्य०–तेरी इच्छा.

स्वर्णल०–(बाहर निकलकर उच्चस्वरसे) अरी प्रेमलता सरोजिनी ! !

प्रे० स०–हां, प्यारी ! क्या आज्ञा है ?

स्वर्णल०–अरी, अभागिनी यहां तो आओ.

(प्रेमलता और सरोजिनीका प्रवेश.)

प्रे० स०–क्यों प्यारी ! कुशल तो है ?

स्वर्णल०–अरी ! कैसी कुशल ? लावण्यवतीका कुछ ठीक नहीं.

प्रे० स०–बाततो सही.

स्वर्णल०–चलकर देख लो.

प्रे० स०–हे प्यारी लावण्यवती ! तुम्हारी क्या गति है ? अंगका रंग पीला पड़गया, आंखोंसे आंसूपर आंसू चले आते हैं.

लावण्य०–मुझको बोलनेका सामर्थ्य नहीं, यह सब वृत्तान्त स्वर्णलता सुनादेगी.

प्रेमल०–अरी स्वर्णलता ! तूही कह, हमारी प्यारीकी क्या दशा है ? मैंने तौ पहिलेही अपने कर्मको ठोंका था कि राजकुमारीको कुछ न कुछ होगया, जो अबतक सोतेसे न उठी.

स्वर्णल०–सखी ! तेरीही बात सत्य निकली.

प्रेमल०–सत्य झूठ तो पीछे देखा जायगा; पहिले लावण्यवतीका वृत्तान्त कह.

स्वर्णल०–सखी ! रातमें राजकुमारीने स्वप्नमें किसी राजकुमारको देखा है, उसीके वियोगसे यह कुगति है. मछ-

लीकी भांति व्याकुल पड़ी तड़फ रही है, तू सदा कहाकरती थी, मैं यंत्र, मंत्र, मोहन, उच्चाटन सब जानती हूं; वे किस दिन काम आवेंगे; आज कुछ अपनी विद्याका चमत्कार दिखा; जिससे लावण्यवतीकी विपत्ति दूर हो और तेरा देश देशमें नाम हो.

प्रेमल०-इस बातमें क्या चाहिये ? लेखनी, मसिपात्र, कागज मँगा; मैं अभी सब देशोंके राजकुमारोंको चित्रपटी लिखकर दिखाये देती हूं. लावण्यवती ! तू पहिचानती जा; जो तेरा चित्तचोर हो, उसे मुझे बतादेना.

लावण्य०-प्यारी ! इससे अधिक और क्या ? जो घर बैठेही काम बन जाय, तो ज्योतिषियोंकी क्या आवश्यकता है ? वीर ! जो तूने मेरा काम ठीक ठीक करदिया, तो जन्म-जन्मांतर तेरा गुण न भूलूंगी.

प्रेमल०-आली ! मेरा तेरा परस्परका व्यवहार है; गुण कैसा, परमगुण तो यह है, जो तेरा कार्य सिद्ध हो जाय, अब सावधान हो कर बैठ और मेरी ओरको देख, मैं सब राजकुमारोंके चित्र लिख लिखकर तुझको दिखाती हूं, इनमेंसे अपने चित्तचोरको पहिचान लेना, फिर लाना मेरा काम है.

लावण्य०-मैं सावधान हूं ? तू चित्र लिख.

प्रेमल०-देखो ! यह मरुदेशके राजा समरविजयसिंहके पुत्र, रणधीरसिंह हैं.

लावण्य०-यह नहीं.

प्रेमल०-और देखो ! यह वर्द्धमानके नरेश, वज्रनाभके तनय, शत्रुजित् सिंह हैं.

लावण्य०-यह भी नहीं.

प्रेमल-यह कर्नाटकदेशके महाराज, बलेन्द्रसिंहके बेटे नारसिंह हैं.

लावण्य०-यह नहीं.

प्रेमल०-देखो आली ! यह मगधदेशके नृपति रिपुदमनसिंहके कुमार, शत्रुदमनसिंह हैं.

लावण्य०-प्यारी ! मेरा चित्तचोर यह भी नहीं.

प्रेमल०-अच्छा इसको देखो; यह विजयनगरके राजा विजयसिंहके पुत्र, सुदर्शन हैं.

(सुदर्शनकी चित्रपटीका दर्शन करतेही चित्रका ध्यान विसरगया और स क्षात् अपना प्राणपति जान अचानक पुकार उठी और ह्रदयसे लगानेको झपटी.)

पद. (राग धनाश्री.)

सखी री यही मेरो चित्तचोर. ध्रु०
दिखा स्वप्नमें हसन रसभरी वांकी ललित मरोर,
इन छलिया छल बलकर मोसों छीनलीन मनमोर,
मेरो चित नित करत परम हित जैसे शशिहि चकोर,
ताको हियो कियो विधनाने अतिशय कठिन कठोर,
दृग उठाय देखो मति आली या छलियाकी ओर।

जादू कर मन हरत पिछाड़ी बैठ रहत मुख मोर,
कठिनाईसे लख्यो करे जब यत्न करोर करोर,
जन्म जन्म उपकार न भूलूं सबदिन रहूं बँदोर,
जबसे चुभी हियेमें आली इन नयननकी कोर,
कल न परत चित चकित भ्रमर ज्यों भ्रमत रहत मन मोर।

(प्यारेकी मोहनी मूर्तिको निहार.)

(राग आसावरी).

साजन अब नहिं भाजन पैहौ लाखबली बनि जैहौ,
पहिले तो मन हरो हमारो अब तुम भाजन चैहौ,
धिक धिक ऐसी रीति प्रीतिपै कैसे मुख दिखरैहौ,
जो तुम बालम बालिबलीसम बनकर बांह छुड़ैहौ,
बांह छुटत तनहू छुट जैहै तब मनमें पछितैहौ,

प्रेमल०—(हंसकर) सखी! किससे बात करतीहो, यह तो सुदर्शनकुमारका चित्र है, सुदर्शनकुमार नहीं हैं, जिनकी तुम हृदयसे लगानेकी सम्भावना करती हो. आली! आज तू ऐसी मतवाली होगई, जो तुझको चित्रका और पुरुषका भी ज्ञान न रहा.

लावण्य०-अरी! तू प्रेमियोंकी दशासे अभी बिदित नहीं.

दोहा.

जल थल वन उपवन सघन, मनुज दनुज पशु प्रेत;
सबमें प्रेमी जननको, मित्र दिखाई देत.

(लज्जित होकर) सखी! मनमोहनका चित्र देखके प्रेमके वशमें होगई और मेरा सब ज्ञान जाता रहा, और मोहकी लटकमें आ, चित्रकोही मित्र समझ, आलिंगन करने लगी; क्योंकि, चित्त बहुत भटक रहा था.

प्रेमल० —सखी! सच्ची प्रीति इसीका नाम है.

लावण्य०—वीर! अब वह यत्न कर, जिससे साक्षात् प्राणवल्लभका दर्शन हो, और मेरा दुःख दूर हो.

प्रेमल०—आली! अभी तेरा दुःख दूर न हुआ?

लावण्य०—सखी! दुःख तो दूर होगया, परन्तु कसक अभी नहीं गई.

प्रेमल०-प्यारी! घबराओ मत्, कसक भी निकाले देती हूं.

लावण्य०-सखी! शीघ्र कोई उपाय कर, क्योंकि इस छलछन्दीने मेरे मनको ऐसे फन्देमें डाला है; जो किसी उपायसे निकलही नहीं सक्ता. मैं नहीं जानती कबकबके वैर इसने मेरे संग निकाले हैं.

प्रेमल०—आली! जब तेरे फन्दमें फँसे तो तू सब बदला लेलेना.

लावण्य०-अरी! परमेश्वर वह दिन तो दिखावे?

प्रेमल०-प्यारी! उसदिनको भी देखलीजिये, और प्राणप्यारेको भी देख लीजिये.

लावण्य०—यह बात तो होती रहैगी, अब तू शीघ्र जाकर किसी यत्नसे प्रीतमको ला, जो मेरे मनको धैर्य हो.

प्रेमलता—आली! घबराती किसलिये हो. अब मैं योगनका वेष बनाती हूं, तू मुझे गेरुवा वस्त्र रँगा दे, और एक झोली और कानोंके मुन्द्रा मंगा दे.

(यह कह, तनपर भस्म रमाती है, और मस्तकपर सिंदूर चढ़ाती है, मृगछाला कांखमें दबाती है, और वीणा हाथमें लेकर सुदर्शनकी खोजमें जाती है, और यवनिका गिरती है.)

इति शालिग्रामवैश्यविरचितश्रीलावण्यवतीसुदर्शननामनाटक प्रथमांक समाप्त.

द्वितीय अंक.

स्थान विजयनगर, सुदर्शनका भवन.

(सुदर्शन सोचमें पड़ा है. और सुलोचन उसके सन्मुख खड़ा है.)

सुलोचन—हे राजकुमार ! तुमको क्या होगया ? जो सब सुधि बुधि विसार वियोगियोंकी भांति, नेत्रोंमें नीर भरे हाहाकार कररहे हो, कोई स्वप्न देखा वा कोई भूत, प्रेत, पिशाच दृष्टि आया वा किसी मनमोहनीनें मोहनी डाल तुम्हारा मन मोह लिया, अपने मनका भेद मुझसे क्यों नहीं कहते जिस लिये आप इतने व्याकुल हो.

सुदर्शन—हे मित्र ! क्या कहूं ? कुछ कहनेके योग्य नहीं.

सुलोच०—भाई ! ऐसी क्या बात है जो कहने योग्य नहीं ?

सुदर्शन०—रात मैंने एक स्वप्न देखा है.

सुलोच०—फिर उसका वृत्तान्त क्यों नहीं कहते, जो उसका उपाय किया जाय.

सुदर्शन—एक सुन्दर स्वरूपवती बाला, षोड़शवर्षकी अवस्था, सोलह शृंगार किये, एक नीलकमलका फूल हाथमें लिये, मेरे सन्मुख आई; और अत्यन्त प्रीतिसनी बातें कर, मेरे मनको मोह लिया; और ऐसा आनन्द दिखाया कि जो आनन्द आजतक नहीं देखा; प्रेमके फन्देमें मेरे मनको फांस, बातोंमें ठगौरीसी डाल, वह चंचल चटकीली मेरा चित्त चुराकर कहीं चली गई; अब उसकी मनमोहनी मूर्त्ति मेरे मनमें बस रही है, जबतक वह सुन्दरी मुझको नहीं मिलेगी, तबकत जलपान न करूंगा; और अंतको अपने प्राण भी उसी चंद्रमुखीको समर्पण कर दूंगा.

सुलोच०—आप घबराते किसलिये हो ? यह बताओ, वह बाला कौन है ? देवकन्या थी; वा यक्षकन्या थी; वा कोई राजकन्या थी; कौनसा नगर था, जिस नगरके राजाकी वह राजकुमारी थी; आप चित्तको सावधान कर, यह सब वृत्तान्त मुझसे कहो; जो उसका ठीक ठिकाना

लगे. प्राण खोना तो मूर्खोंका काम है; जो देहमें प्राण है तो सहस्रों उर्वशी घर बैठेही आय जायँगी.

सुदर्शन–हे मित्र ! मेरे प्राण जानेमें कुछ सन्देह नहीं, क्योंकि जिस कोकिलकण्ठीपर मेरा मन मोहित हुआ है उसका मिलना महाकठिन है.

सुलोच०–ऐसी कौनसी वस्तु है, जो परिश्रम करनेसे न मिलै; परिश्रम करनेसे तौ परमेश्वर भी मिल सकता है; सो इस बातसे तो आप घबरायँ नहीं; मिलाना तो मेरा काम है, परन्तु यह तो कहो, उसका नाम, ग्राम भी तुमको ज्ञात है.

सुदर्शन–भाई ! जब वह सुन्दरी मुझसे मीठी मीठी बातें करने लगी, तो मैंने कहा–हे प्यारी ! अपना नाम और ग्राम तो मुझे बतादो, तो उसने मुसकुराकर कहा–"हेमकूट पर्वतके ऊपर एक कंचनपुरनाम नगर है, महाकठिन उसका मार्ग है, रास्तेमें अनेक वनवाटिका, नदी, पर्वत पड़ते हैं, और प्रत्येक मनुष्यके वहां जानेकी भी गम नहीं, लाखो योधा अस्त्र शस्त्र धारण किये नगरकी रखवालीके लिये आठों पहर चारों ओर घूमते रहते हैं; समरसिंह वहांका राजा है, उसीकी मैं पुत्री हूं, और लावण्यवती मेरा नाम है." इतना कह वह चन्द्रमुखी मेरे लोचनचकोरोंके सन्मुखसे गुप्त होगई, वह भोलीभाली सूरत, और अद्भुत छवि, अबतक मेरे चित्तसे नहीं उतरती.

सुलोच०–हे प्यारे ! भोलापन देखकर मत भूलो; यह

भोलीभाली भी भालेकी नोकसे भी कठिन हैं. इन्होंने सहस्रों मनुष्योंके हृदय छेदन कर डाले हैं, यह ऐसी निर्दयी जाति है. दयाका नाम भी इनके धोरै होकर नहीं निकला, फिर जान बूझकर वृथा इस विपत्तिमें क्यों पड़ते हो.

सुदर्शन—हे मित्र ! विपत्तिमें तो उसी दिनसे फँसगया, जिस दिनसे स्वप्न देखा. अब पश्चात्ताप करनेसे क्या होता है ? यह स्वप्न नहीं था, मेरे प्राणोंका ग्राहक समझना चाहिये. क्योंकि अन्न पानी छुटाया, नींद भूँखको विसराया, शरीरका यह ढंग बनाया; कि बात करनेको चित्त नहीं चाहता; और वारम्वार यही विचार है कि, उस शशिवदनीका दर्शन करूं; इस राज्यसे मुझको कुछ प्रयोजन नहीं.

सुलोच०—भाई ! ऐसे दुर्वाक्य मुखसे मत निकालो. इन बातोंको सुन सुनकर मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है. प्यारे ! यह प्रेमका पन्थ अतिकठिन है, जो इस मार्गसे गया सो गया, फिर लौटनेकी आशा नहीं. इसी पंथमें सहस्रों पुरुष भटक भटककर मरगये, और अन्त न पाया. पुरूरवा, अनिरुद्ध, दुष्यन्तादिकने कैसे कैसे कष्ट उठाये, सहस्रों योगी वियोगी बन बन घूमते फिरे, परन्तु अन्तको किसीने सुख न उठाया, इसीलिये मैं वारम्वार आपको समझाता हूं.

सुदर्शन—योगीका वेष बनाना, और घर घर अलख जगाना तो मुझे स्वीकार है; परन्तु किसी भांति उस मृगनयनी पिकबयनीकी ओरसे मुख मोड़नेको और प्रेमका पंथ

छोड़नेको, जी नहीं चाहता, जबतक उस प्राणप्यारीका दर्शन न होगा, अन्न खाना और पानी पीना मुझको बुरी वस्तु हैं; जब प्राणही खोनेतकके लिये तैयार हूँ. तो फिर क्या सन्देह है, जिसने प्रेमके पन्थमें पग धरकर प्राणोंका मोह किया, वह इधरका हुआ न उधरका, त्रिशंकुकी भांति मध्यहीमें लटकता रहेगा.

सुलोच०—मरजाना तो बहुत सहज है, परन्तु प्रेमी नाथ अत्यन्त कठिन है, प्रेमके पन्थमें जिसने पांव धरा सो अधमरा हुआ, न जीनेका, न मरनेका, और सहस्रों कष्ट ऐसे ऐसे उठाने पड़ते हैं, जिनका वर्णन नहीं हो सकता. घर दारका छोड़ना, जगतके लोगोंसे मुख मोड़ना, सजातियोंसे स्नेह तोड़ना, पत्थरोंसे शिर फोड़ना, ठण्डे ठण्डे स्वास भरना, विरहके खड्गसे हृदयको विदीर्ण करना, अनेक कष्टही कष्ट हैं.

सुदर्शन—कष्टको देखूं, वा उस कृशोदरीको, जिसके विरहकी आग तनको फूंके डालती है, जिस समय उस चञ्चलबालाकी मुसकानका ध्यान आ जाता है, घायलकी भांति कलेजेको थाम, लोटताही फिरता हूं.

सुलोच०—प्यारे! इस ध्यानको छोड़ो, और परमेश्वरका ध्यान करो, जिससे भक्तिमुक्ति दोनों पदार्थ मिलें, और जिस मनुष्यको कामिनीकी लटनट खटकी उसे सांपिनीनें डसा, फिर वह कदापि पानी नहीं मांगता, सिसकही सिसक-

कर मरजाता है, प्रेमके रोगीको अमृत भी गुण नहीं कर सकता, वरन धन्वंतरि, और अश्विनीकुमार भी, उपचार करैं, तो आरोग्य नहीं कर सकते.

सुदर्शन—मरनेका शोक कदापि प्रेमी लोग नहीं करते. इसलिये मुझको भी मरनेका सोच किंचिन्मात्र नहीं, मैं तो प्रथमही अपने प्राण प्राणप्यारीको अर्पण कर चुका, और उसीकी शरणमें रहनेकी इच्छा करली, तो फिर मेरे प्रेमका प्रभाव पूर्ण क्यों न होगा, नहीं ! अवश्य होगा.

हे मित्र ! अभी यह बातें सुझतीं हैं, जब कोई काम करोगे तो ज्ञात होगा; कैसे कैसे कष्ट सहने पड़ते हैं.

उद्योगी पुरुष जबतक किसी कार्यमें हाथ नहीं डालते, तबहीतक सोच संकोच बना रहता है, और जब आरम्भ करदिया. फिर क्या सन्देह. सब सोच विचार बिसार, पूर्ण व्रत धार, दिनरात प्रीतिसहित प्यारी प्यारी रटूंगा तो मेरा प्रेम पूर्ण क्यों न होगा ?

सुलोच०—एक स्त्रीके लिये इतना कष्ट उठाना, चतुरोंका काम नहीं, जो आपका शरीर आरोग्य है तो सैकड़ो राजकुमारी, एकसी एक रूपवती और मनोहारिणी घर बैटेही आजायँगी.

सुदर्शन—मित्र ! यह बात तो आपकी सब सत्य है, परन्तु तुमने यह भी सुना है; कि नहीं.

दोहा.

"जैसे किरवा आकको, कहा करै वसि आम;

जेहिका मनरम जाहि सन, ताहि ताहि सनकाम."

अब तो हमने लावण्यवतीके प्रेमके पन्थमें पग धर दिया, अब हमको शोक सन्तापके भार उठानेका कुछ सोच नहीं, प्राण रहै चाहे जायँ, मेरा प्रेम पूरा है, अधूरा नहीं, मैं अधकचरे लोगोंकी तरह प्रत्येक मनुष्यके सन्मुख नहीं रोनेका.

सुलोच०—आप क्या नहीं रोनेको? रोनेका तो यह व्यवहारही ठहरा, जो इस मार्गमें चरण धरेगा, वह एकवार क्या सहस्रवार शिर पकड़ पकड़कर रोवैगा. यह प्रेमका पन्थ महादुस्तर है; जो इसमें फँसा वह कदापि न निकला, और मरतेसमय भी यही शब्द निकला, यह रोग सन्निपातसे भी अधिक है, बचही नहीं सकता, जो सज्जन पुरुष हैं, वह इसकी ओरको मुख करके भी नहीं सोते.

सुदर्शन०—मैं तो कभी भी उधरको मुँह न करूं, परंतु मन भी मानै, जिसको लावण्यवतीने प्रथमही अलकोंके जालमें फांस अपने वशमें करलिया; और भौहोंके धनुष और नेत्रोंके तीर जानताककर, नित्यप्रति मारती है, और शोकसन्तापकी फांसी गलेमें डाल रक्खी है; भला फिर निकलनेका कौन उपाय है.

सुलोच०—करनेसे सब उपाय होसकते हैं, अपना मन

अपने वशमें रखना चाहिये, यह मन भटकानेसे भटकता है, और रोंकनेसे रुकजाता है. सत्पुरुषोंका मन कदापि नहीं भटकता.

सुदर्शन—भाई ! उस चंचल चटकीलीकी छबीली छबि देख, मेरा मन तो भटक गया, मेरे करनेसे तो स्थिर होता नहीं.

सुलोच०—मित्र ! इसीलिये मैं वारम्वार समझाता हूं, धीरे धीरे मनको रोंको, और जो न रोंकोगे तो प्रेमका समुद्र महागंभीर है; किसीको इतनी गम नहीं, जो पैरकर उसका पार पावै; जो घुसा वह डूबगया.

सुदर्शन—हे मित्र ! अब तुम मुझको डूबाही समझो.

सुलोच०—प्यारे ! ऐसी बातें न करो, मेरा मन व्याकुल होता है.

सुदर्शन—यह सब मुख देखेका व्यवहार है, तुमको मेरा किंचिन्मात्र भी मोह नहीं, याही मित्रताका धर्म है; जो इस विपत्तिमें मेरे साथी नहीं होते, अबतक तो तुमसे कहा, अब आगे तुमसे कहनेका भी नहीं; जो विधाताने मेरे कर्ममें लिखा है, वह कोटि उपाय करनेसे भी मिट नहीं सकता. अब तुमको नमस्कार है; मैं अपना उपाय आप करलूंगा.

सुलोच०—(सजलनयन हो) हे मित्र ! आप क्या कहते हैं, मैं आपका बुरा चेत सकता हूं, जो सदा आपके चरणोंका दास रहा, और आपकी छत्रछायामें इतनी अवस्था व्यतीत की,

जब आपहीके प्राण, नहीं तो मेरे प्राण कहां; जो मित्रोंका बुरा चेतते हैं, उनको जन्मजन्मांतर नरकवास होता है.

चौपाई.

"जे न मित्र दुख होत दुखारी, तिनहिं विलोकत पातक भारी"

अपनी मित्रता और शत्रुताका भेद आपको अपना पेट फाड़कर नहीं दिखा सकता, परन्तु यह तो विचारकर देखिये, कोई शत्रु भी इसप्रकार समझाता है.

सुदर्शन—हे मित्र ! आपका क्या दोष है, यह सब मेरेही भाग्यका दोष है. मनुष्य जैसा कर्म करता है, वैसा भोगता है, जो मेरा मन चोरी न जाता, तो इतना कष्ट क्यों उठाना पड़ता; अब मेरे मनमें यह आता है कि, प्रथम प्यारीके देशको जाऊं; और उसके द्वारपर जाकर अलख जगाऊं; जो उस मनमोहनीका दर्शन होगया, तो सब कार्य पूर्ण होगया, और जो वहां भी मुझ अभागीका भाग्य न जागा तो वहीं अपने शरीरका परित्याग कर दूंगा.

सुलोच०—प्यारे ! इतने व्याकुल मत हो, धैर्य धारण करो. जो आपकी यही इच्छा है तो सात दिन और ठहर जाओ, सात दिन पीछे मैं तुम्हारे साथ चलूंगा, और किसी वीरवेताल, भूतप्रेत, डाकिनी, शाकिनीसे, मित्रता कर तुम्हारी प्राणप्यारीकी सुधि मंगाऊंगा; जिस प्रकार वह आवैगी उस ढंगसे लाऊंगा.

सुदर्शन—हे मित्र ! अब मेरा मरण जीवन तुम्हारे हाथ

है, मेरा कुछ वश नहीं चलता; अब इस कामके करता धरता तुम्ही हो, परन्तु एक सन्देह मुझको बड़ा भारी है.

सुलोच०—वह क्या सन्देह है ?

सुदर्शन—प्रथम तो यही सन्देह है, सात दिनको क्यों टाला, दूसरा सन्देह यह है, कि, भूतप्रेतोंसे मित्रता करनेकी कौनसी विद्या है ?

सुलोच०—इन्द्रजालका एक वशीकरण मंत्र मैंने गुरूसे पढ़ा है, जब किसी कार्य करनेकी इच्छा होती है, तो सात दिन पहिले जपना पड़ता है, जब वह सिद्ध हो जाता है, फिर जो मनोरथ हो सो क्षणमात्रमें पूरा हो सकता है.

सुदर्शन—सात दिन तो सात युगकी समान कटेंगे !

विदूषक—महाराज ! आप क्या सटर पटर करते फिरते हो, मुझसे कहते तो मैं आपको क्षणमात्रमें ले उड़ता, अब भी कुछ हानि नहीं, आप मेरे कन्धेपर आरूढ़ हो जाओ, मुहूर्त्तमात्रमें कञ्चनपुर पहुंचाये देता हूं, कैसेही भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी क्यों न हों, सबको मार, पछाड़ गिरा दूंगा; एकबार तो लंकापुरीकी भांति सब नगरमें धूमधाम मचा दूंगा, जैसे हनुमानने पुष्पवाटिका उजाड़, अक्षकुमारको पछाड़, पलभरमें फूंक फांक, चौड़ा करदिया था; ऐसेही मैं भी सब नगरको चौपट कर, लावण्यवतीको दूसरे कन्धेपर धर, आपके संग उसके फेरे फेर, नगरमें घर घर बधाई बटवा देनी.

सुदर्शन—भाई! तुम किसीका दुःख सुख नहीं देखते? प्रत्येक समय हँसीही हंसी सूझती है, इस समय यह तुम्हारी बातें हमको नहीं भातीं.

विदूषक—महाराज! हंसी कैसी? क्या आप मेरी बातोंको झूँठ मानते हैं?

मेरी कथा सुनिये! प्रथम जन्ममें मैं जांबवन्त था, क्षण मात्रमें पृथ्वीकी सात प्रदक्षिणा दी थी, और रावण कुम्भकर्णको युद्धमें पराजय किया था, और केशरीनन्दन भी मेरी सम्मतीसे समुद्रको कूदे थे और लंकासे जानकीकी सुधि लाये थे, मुझको अपने कोटान्कोटि जन्मोंकी व्यवस्था कण्ठाग्र है, जो चाहो सो बूझ लो, मैं आपको भली भांति समझा सकता हूं.

सुदर्शन—(हंसकर) आप क्यों इतना परिश्रम करते हो, चुपचाप बैठे रहो, आपके प्रतापसेही सब काम पूरा हुआ जाता है.

विदूषक—मैं तो आपको दुःख देखकर आया था, अब आपकी इच्छा, मेरेसंग चलनेकी नहीं है, तो मैं जाता हूं परन्तु मुझविना यह काम पूरा होना महाकठिन है.

सुलोच०—मित्र! तुम एक न एक बात ऐसी ही कह देते हो, नेत्र बन्दकर, प्यारीका हृदयमें ध्यान करना आरम्भ करो, फिर सात दिन सात पलकी समान व्यतीत होंगे.

सुदर्शन—अच्छा मित्र! मैं प्यारीकी मनोहर मूर्तिका

ध्यान करता हूं, और आप अपना मंत्र सिद्ध कीजिये, जिससे मेरा मनोरथ सिद्ध हो. (सुलोचन जाता है, और सुदर्शन सोचके समुद्रमें पड़ा हाय हायकर रहा है और कहता है तुझबिन सात दिन कैसे व्यतीत होंगे).

विदूषक—महाराज! कुछ सन्देह मत करो, प्यारी मिलै और प्यारीके संगमें पांच प्यारी और.

सुदर्शन—विदूषक! तूही कुछ प्यारीके मिलनेका उपाय कर, जो इस शरीरकी पीर दूर हो.

विदूषक—बहुत अच्छा महाराज! मैंही कुछ यत्न करूंगा.

सुदर्शन—फिर कब?

विदूषक—जब आपकी इच्छा हो, मैं तो आधीरातको भी उपस्थित हूं.

सुदर्शन—तू तो कहता था, मैं क्षणमात्रमें लावण्यवतीको लादूंगा.

विदूषक—अब भी तो कहता हूं.

सुदर्शन—फिर चाहिये क्या.

विदूषक—सामग्री मंगाओ.

सुदर्शन—क्या सामग्री चाहिये.

विदूषक—सौ मन तिल, पचास मन चावल, पचीस मन जव, सौ मन घृत, सौ मन मिष्टान्न, और अनेक प्रकारकी सौ मन मेवा.

सुदर्शन—इसका क्या होगा ?

विदूषक—महाकालीका हवन.

सुदर्शन—कब ?

विदूषक—चैत्रमासकी नवरात्रोंमें, नौदिनमें देवीकी पूजा करूंगा, जब देवी मुझपर प्रसन्न होगी, और कहैगी वर माँग, उस समय यही वर मांगूगा, आज हमारे महाराजका काज सिद्ध कर, फिर देवीको और कालभैरवको संग लिये कञ्चनपुरको चला जाऊंगा, और क्षणभरमें लावण्यवतीको आपके सन्मुख लाकर खड़ा कर दूंगा.

सुदर्शन—तू हँसीसे न बचा.

विदूषक—हम लोग तो आपका चित्त प्रसन्न करनेवाले, और शुभचिन्तक हैं.

सुदर्शन—यह समय हँसीका नहीं है. (आपही आप) हाय ! मुझे कोई ऐसा मित्र दृष्टि नहीं आता, जो मेरी इस विपत्तिमें सहाय करै.

राग देश.

विपतिमें कोऊ न बूझत बात ॥ ध्रु० ॥
सब अपने अपने स्वारथके तात मात अरु भ्रात ॥
मित्रहु गये मंत्रसाधनको इकले जिय घबरात ॥
छिन छिन प्रगट होत विरहानल कैसे कटैं दिन सात ॥
दूजे बनी रहत है चितमें यह चिन्ता दिनरात ॥
लोग कहत हैं मंत्र जपनमें होत बहुत उतपात ॥

प्रात होत तो रात मनाऊं रात होत तो प्रात ॥
नींद न आवत अन्न न भावत जिय घबरायो जात ॥
एकही दिनमें प्रिय प्यारीबिन छिन छिन जिय अकुलात ॥
शालिग्राम सात दिन कैसे सहै कष्ट यह गात !

हे विदूषक ! आज सात दिन भी व्यतीत होगये, और सुलोचन न आया, क्या करूं, कहां जाऊं, किससे बुझूं, इस समय मुझे कोई अपना दृष्टि नहीं आता, हाय ! वही बात तो सत्य न हुई हो, जो लोग कहते थे, कि मंत्र जपनेमें सैकड़ों विघ्न होते हैं, व्याघ्र, सिंह, सर्पादिक दिखाई देते हैं, अनाश्रित चारों ओर अग्निही अग्नि दृष्टि आती है; कभी जलही जल दीख पडता है. कभी भूतपिशाचादिक भय दिखाते हैं, जो उनको देख भयभीत हो आसन छोड़ भाग निकलते हैं, फिर उनको तनमनकी सुधिबुधि नहीं रहती, मैं कौन हूँ और कहां हूं. हाय ! जो ऐसा हुआ तो मैं कहींका न रहा, प्यारा भी गया और प्यारी भी न मिली ? भला मंत्र सिद्ध हुआ.

विदूषक—महाराज ! यह समय व्याकुल होनेका नहीं है, धैर्य धारण कीजिये, मेरा मन यह साक्षी देता है कि सुलोचन कोई घड़ीमें आनेहीवाला है, आप घबरायँ नहीं !

सुदर्शन–बहुत धैर्य धारण किया, अब मेरे मनको धैर्य नहीं होता, और मित्रविन मेरी बाँह टूटगई, और जीवनकी आशा छूटगई, खूंटीसे मेरा कटार उतार दे, मैं अपने पेटमें मारकर मरजाऊं.